ISSN: 2456–5474 RNI No.UPBIL/2016/68367 Vol-4* Issue-8* September- 2019
Innovation The Research Concept

भूमंडलीकरण और हिन्दी साहित्य की दशा

रणजीत कुमार सिन्हा
खड़गपुर कॉलेज हिन्दी विभाग
खड़गपुर, इन्दा,
पश्चिम मेदिनीपुर, भारत

सारांश

''बाजारवाद या भूमंडलीकरण ने हिन्दी साहित्य का सबसे अधिक विनाश कर दिया है। पिछले कुछ वर्षों में हमारी साहित्यिक शब्दावली में जो परिवर्तन आये हैं, उन पर विचार करके देखिए। आज साहित्य में आंदोलन नाम की कोई चीज नहीं रह गई है। जन आंदोलन, सामाजिक आंदोलन की जगह आज साहित्य शब्दावली के स्तर पर 'विमर्श' बन गये है। स्त्री आंदोलन – आज स्त्री–विमर्श, किसान आंदोलन – किसान विमर्श, दलित आंदोलन – दलित विमर्श, आदिवासी आंदोलन आज आदिवासी विमर्श। आंदोलन की कहानियां लिखने हेतु लेखक को आंदोलनकारियों के बीच जाना पड़ता था। उनके सुख–दुःख और संघर्ष में शामिल होना पड़ता था। परंतु भूमंडलीकरण और बाजारवाद ने विमर्श मंच तैयार कर दिया। आप विमर्श घर में बैठकर भी कर सकते हैं, अकेले भी घर पर लिखते हुए कर सकते हैं। यही कारण है कि विमर्श वाली कहानी जन–जीवन से कटती जा रही है। फिर 'वर्ग' की जगह 'जाति' की बात होने लगी। जनता की जगह अस्मिता की बात होने लगी। सामाजिक संघर्ष की जगह पहचान के संकट की बात, मुक्ति की जगह मान की बात होने लगी है। पर इन परिवर्तनों से हमने हासिल क्या किया ?

सन् 1976 में ही सर्वेश्वर दायाल सक्सेना ने इस बाजारवाद के भयानक संकेत से कहानी को बचाने के लिए एक सुझाव दिया था –

1. पश्चिमी फैशनपरस्त अवधारणा से बचो।
2. शिल्प को आतंक मत बनाओ।
3. उनके लिए भी लिखो जो अर्द्धशिक्षित हैं, और उनके लिए भी जो अशिक्षित है, जिन्हें तुम्हारी कहानियॉ पढ़कर सुनाई जा सके।
4. इस देश की तीन–चौथाई जनता की सोच–समझ को वाणी दो, जो खुद नहीं कह सकती। और
5. कहानी को लोक कथाओं और फेब्लस से जोड़ो, उसकी सादगी की ओर मोड़ा, विन्यास से सीखो और उसे आम आदमी के मन से जोड़ो।

पर आज तो हिन्दी कहानी जनोन्मुख होने के बजाय बड़ी बेशर्मी से अभिजनोन्मुख हुई है और हो रही है। आम आदमी के मन के बजाय खास आदमी के मन की बात हो रही है। और दो कदम आगे बढ़ते हुए हिन्दी कहानी स्त्रीवादी, दलितवादी विमर्षों की कहानी बनी, लेकिन वास्तव में यह दिशा कहानी को सेक्स, हिंसा और जातिवाद लेखन के फार्मूलों की ओर ले गयी और कहानी को जनोन्मुख होने के बजाय बाजारोन्मुख बना दिया। (रमेश उपाध्याय – आगे की कहानी, 20 मई 2013)

आज बाजारवादी संस्कृति का दुश्प्रभाव ग्रामीण इलाकों तक भी पहुॅच गया है, दूरस्थ गांवों में भी हर तरह की मनभावन उपभोक्ता सामग्री भी सहज उपलब्धता बन गयी है। हमारा सांस्कृतिक परिदृश्य भी तेजी से बदल रहा है। बाजार का अपना तर्क है, अपना उद्देश्य और मनोविज्ञान है। यह एक ऐसी सपनीली दुनिया है, जिसका हर कोई हिस्सा बनना चाहता है। बाजारवादी

संस्कृति का सबसे बड़ा लक्ष्य और उद्देश्य मुनाफा कमाना है। मुनाफा उसका केन्द्रीय भाव है, इसके चलते आज हमारे समय के मनुष्य को बाजारु संस्कृति ने जागरूक और चेतस नागरिक की बजाय एक उपभोक्ता में बदल दिया है। यह उपभोक्ता व्यक्तिवादी होता है। उसका कोई सोच, कोई विचार नहीं है। उसके पास कोई सामाजिक सपना नहीं है। वह परिवर्तन तो चाहता है, पर केवल अपने जीवन में। आज मनुष्य के लिए कैरियर सबसे प्रमुख है। धनलिप्सा मनुष्य को उसकी सामाजिक जिम्मेदारियों और कर्तव्यबोध से विमुख कर देती है। बाजारवादी संस्कृति एक ऐसी लोकप्रिय संस्कृति (पॉप कल्चर) का निर्माणकर्ता है, जो वैश्विक ग्राम की अवधारणा में सामूहिकता के लिए कोई स्थान नहीं है। एक उपभोक्ता अकेला मनुष्य ही हो सकता है। उपभोक्ता ही बाजारवाद की अंतर्वस्तु है। उसका सार तत्व है।

आज बाजारवाद या भूमंडलीकरण के दौर की बातें उठती हैं तो मुझे प्रेमचंद की दो कहानियों की याद आती है। ईदगाह और कफन। दोनों में बाजार का उल्लेख है पर इस दौर ने बाजार और प्रेमचंद के जमाने के बाजार में काफी बदलाव है। प्रेमचंद के बाजार में आत्मीयता है पर आज के बाजार में मुनाफा के सिवा कुछ नहीं।

आज भूंडलीकरण ने तो हमारे सामने इतने विकल्प लाकर दिए हैं कि जीवन एक नर्क से बढ़कर कुछ नहीं लगता है। आज तो विवाह के बदले लीव इन रिलेशनशिप अधिक मान्य है, जो समाज में सांस्कृतिक विकृति पैदा करते हैं। आज मनुष्य में विचार नहीं विकार पनप रहे हैं औरों के प्रति जो बाजारवाद की देन है।

आज समाज और व्यक्ति दोनों ही बाजारवाद के कब्जे में कैद है। 21वीं सदी का समय केवल बाजार का समय है। इस सदी पर भूमंडलीकरण और बाजारवाद की मार है। कंप्यूटर, मोबाईल और इंटरनेट ने तो प्रेम की परिभाषा को बदल दिया है। देह के राग को बंधन मुक्त कर दिया है। आज व्यक्ति एक वस्तु में बदल चुका है और स्त्री के लिए भी माल शब्द का प्रयोग बड़े जोर–शोर से चल रहा है। बाजारवाद और भूमंडलीकरण ने सबसे पहले व्यक्ति के दिमाग पर अपना कब्जा जमाया है। बाजारवाद ने हमारे नैतिकता, आदर्श, सच्चाई, सभ्यता, कुल मयार्दा को ताक पर रख दिया है।

आज के समय में प्रेम और देह, मन की गति से होड़ करने में लगे हैं। इंटरनेट ने जानने समझने के जो मौके दिए हैं, उसने प्रेम जैसे खूबसूरत एहसास को बदल डाला है। दुष्यंत की पहली कहानी संग्रह ''जुलाई की एक रात'' में हम देख सकते हैं कि आज वैश्वीकरण की ऑधी हमें कहां लाकर खड़ा करती है। आज के महान कथाकार उदय प्रकाश जी दुष्यंत की कहानियों की पृष्ठभूमि के विषय में कहते हैं – ''ग्लोबल कॉरपोरेट पूंजी और टेक्नोलॉजी के असर से बदल चुके मूल्यों और मानवीय रिश्तों को उघाड़ती हुई दुष्यंत की ये कहानियॉ उत्तर आधुनिक वास्तविकताओं की किस्सागोई हैं, लेकिन यहां दुष्यंत ने वास्तविकता को बयान करने के लिए किस्सागोई की जो शैली अपनायी है, वह बिल्कुल निजी और पूर्ववर्ती पीढ़ी से आगे की है।''

आज बाजारवाद ने साथ 'होना–सोना' सुबह होने तक कोई 'हैंगओवर' नहीं छोड़ता। साथ होने के लिए रात हो, कमरा हो, एकांत हो जैसे रूमानी स्थलों की भी जरूरत नहीं है – 'आज आओगे ? वी बिल मेक लव फॉर वन लास्ट टाइम' लड़के ने आंखें बंद कर ली। लंबी सांस ली और मुझे यकीन है फिर तुम्हें इस अतीत पर कोई अफसोस नहीं होगा। (बीच सड़क पर,पेज –70)

दुष्यंत की कहानियों से गुजरते हुए हम पाते हैं कि इनके पात्र ग्रामीण कुंठाओं और वर्जनाओं से मुक्त हैं पर उनमुक्त नहीं। दुष्यंत के पात्रों ने शहरीकरण को अपना लिया है। इनके पात्र पूरी तरह आधुनिकता से खेल रहे हैं। वे औरों से या औरों के अनुभव से जीवन को नहीं बनाना चाहते हैं। सच, झूठ, खट्टा–मीठा नैतिक, अनैतिक आदि को वे अपने जीवन के अनुभूत अनुभवों से तय करते हैं।

दुष्यंत की कहानियों पर केवल वर्तमान की दशा का चित्रण कह कर आप आरोप भी नहीं लगा सकते हैं। कारण दुष्यंत ने अतीत का भी सुंदर चित्रण और उसके नास्टेल्जिक एहसास भी दिखाते हैं। ताला चाबी दरवाजा और संदूक कहानी के माध्यम से दुष्यंत ने नंदिता और राककौरी अपने दोनों विचारों को रखता है – ''एक तरफ नंदिता ने अपने होंठ राहुल के होठों पर दिये और जुबान पर ताला लगा दिया'', और दूसरी तरफ मृत्युपरांत रामकौरी ने नाड़े में ताजिंदगी कैद चाबी से खुलने वाले बक्से में निकाला एक सामान्य सा खत –"मेरी हमनफस रामकौरी, पूरा परिवार पाकिस्तान जा रहा है। मुझे भी जाना पड़ेगा। इंषा अल्लाह जिंदगी और कभी लौटना हुआ तो जरूर आकर मिलंगू। तुम शादी कर लेना – तुम्हारा रसूल।" इसे हम एक असाधारण प्रेमकथा भी कह सकते हैं। यहां दोनों पात्र अपने समय के प्रतिनिधि चरित्र हैं।

बाजारवाद ने हमें किस चौराहे पर ला कर खड़ा किया है, महज कुछ वर्षों में, उसके यथार्थ को समझने जानने में ये भी समय है कहानी की ये क्लीपिंग्स काम की है। खुद दुष्यंत पाठक के ऊपर छोड़ते हैं कि पाठक ही तय करे – ''ये बाजार के उत्कर्ष का दौर था। ये वो भी दौर था, जब घोड़ों के रूप में गिने जाने का दौर था ये वो दौर भी था जब अगर अंगरेजी नहीं आती थी तो कुद नहीं बेच सकते हो तो चुनाव के दिनों में किसी नेता के कार्यकर्ता ही बन सकते हो और कुछ नहीं। उसके सीनियर्स को नौकरी नहीं मिल रही है। सुपर सीनियर्स की नौकरी जाने वाली है। सुपर–सुपर सीनियर्स के पैकेज घटाकर आधे कर दिये गये है।'' एक और देखें – क्या यह आज के युवाओं के अतीत, वर्तमान और भविष्य के दृष्य नहीं हैं ?

दूसरे कथाकार विजयकांत हैं जिनकी कहानी संग्रह 'मायावती' है। समीक्षा प्रकाषन जे.के मार्केट, मुजफ्फरपुर से प्रकाषित हुई है।

विजयकांत की कहानियों में आज का सामाजिक यथार्थ संश्लिष्ट और बहुसंरचनात्मक है। गॉव हो या षहर, वे भारतीय समाज के सातवें दषक के यथार्थ की उपस्थिति नहीं दिखाते किन्तु वे षोशण के उस रूप को दिखाते है।

सन् 1991 में भारत में नई आर्थिक नीतियों के नाम पर भारत ने अपने देश का सोना बेचा तथा उदारीकरण, निजीकरण और वैश्वीकरण की जो नीतियॉ अपनाई गई, उसका असर भारतीय जनजीवन को अछूता नहीं छोड़ा।

भूमंडलीकरण रूपी साड़ आज संस्कृति के अस्तित्व और अस्मिता के प्रष्न को निरन्तर जटिल बनाता

जा रहा है। बाजारवाद के चलते सामाजिक और राजनीतिक नैतिकता बीते कल की बातें हो गई हैं। सामाजिक सरोकारों में कमी आई है। 'मायावती' की कहानियों में इन सारी चीजों को देखते हैं।

विजयकांत की कहानी संग्रह 'मायावती' की अधिकांश काहनियों के केन्द्र में नारी है। ये नारी पात्र लीक से हटकर विद्रोही और आक्रमक है। ये अबला या असहाय नहीं है। इनमें प्रतिशोध की भावना है। ये पुरुष सत्ता को चुनौती भी देती है। इनकी कहानियों में हमें दो तरह के विस्थापन देखने को मिलता है। एक देश का विभाजन और दूसरा भूमंडलीकरण का विस्थापन (केलिग्राम) कहानी में दखिाई पड़ता है। यह कहानी 'मायावती' को बिहार प्रांत में संकेत को आधार बनाकर पूरे भारतीय समाज का चित्रण करती है।

'केलिग्राम' में यह भी संकेत मिलता है कि ''मिड डे मील का नब्बे फीसदी तो मिडीयेटर खा जाते हैं। मुखिया, सचिव, हेडमास्टर और आकिसरान की जेब में जाता है मिड डे मील। जिस्मफरोषी की ऐसी हंगामेबाज प्रतियोगिता है कि बड़ी सरकारी गैर सरकारी लूटों की ओर झॉकने की गुंजाइष ही खत्म।''

ऋशिता की मॉ आंगनबाड़ी सेविका मनुनी की निगाह इसी सत्ता–पूंजी की ओर थी और इसे हथियाने के लिए हर संभव प्रयत्न करती है। विजयकांत ने मनुनी के माध्यम से बाजारवाद के भयंकर परिणाम को दिखाया है। यहां स्त्री प्रताड़ित नहीं है बल्कि सत्तापूंजी की महात्वाकांक्षा के लिए किसी भी सीमा तक जा सकती है। दे हके इस्तेमाल होने तक।

भूमंडलीकरण और बाजारवाद में जाति महत्वपूर्ण नहीं है। ये नए अर्थतंत्र में पूॅजी का प्रभाव है। सत्ता और पूॅजी का खेल है।

'धतियार' कहानी में केवल मुनाफे की ओर ही समाज को लाया जाता है और नेता लोग कमाते हैं। एक तरफ 'भूरबाला साफ करो' का नारा है तो दूसरी ओर वे ही निम्नवर्ग या जातियों को पूॅजी अथवा थोड़ी सुविधा देकर उन्हें तोड़कर अपना स्वार्थ सिद्ध कर रहे हैं। विभाजित और विस्थापित शोषित जनता है, शोषक वर्ग नहीं। कहानी का पात्र 'रतन' सब समझता है पर मूसहर बिरादरी बिक गयी है और रतन ही उनका दुश्मन हो गया है।

विजयकांत की 'मायावती' कहानी संग्रह में आज के भ्रष्ट होते संवेदनषील समाज का चित्रण है किन्तु उदारीकरण, निजीकरण और भूमंडलीकरण से सामाजिक और सांस्कृतिक अस्मिता के विस्थापन का भयावह चित्रण भी है, जहॉ कोई संवेदना नहीं, जहॉ नीति अनीति का भेद नहीं बल्कि पूॅजी के दुश्चक्र में पूरा समाज बुरी तरह फॅस चुका है।

बाजारवाद या भूमंडलीकरण ने सामाजिक जीवन और औरत को बाजारू बना डाला है। आज घर परिवार में व्यक्ति का मूल्य उसकी उपयोगिता से ऑका जाने लगा है। पर पहले ऐसा नहीं था। पहले आर्थिक पक्ष प्रबल नहीं था और मूल्यांकन व्यक्ति के सरोकारों से मापा जाता था। आज गॉव के युवक जो शहर कमाने के लिए आते हैं और बड़े अधिकारी बन जाने पर वे गॉव के रास्ते रिश्तों को भूल जाते हैं। वे भटकाव में आकर आडंबर में लिप्त होते जा रहे हैं। इस पश्चिमी संस्कृति के बाजारू प्रभाव से आज बाजारवाद ने गॉव के तटबंधों को भी अपनी चपेट में कर लिया है। शहरी वारदातों और आदमी के कमीनेपन ने गॉवों में भी अपनी जगह बना ली है। आज प्रेमचंद के प्राप्त नहीं हैं। कारण तब कमीनापन शहरों में कम था और गॉवों में न के बराबर।

आज हिन्दी कहानी भी इन्हीं मूल्यों को स्वर देती नजर आ रही है। जिनको रचनाकारों ने भोग का विषय बना दिया है। आज तकनीक ने जिस तेज रफ्तार से सबकुछ बदल कर रख दिया है, लोग भी उसी के अनुसार चल रहे हैं। एक रोजगार और कैरियर को लेकर जो जद्दोजहद दिखाई पड़ती है और दूसरा द्वन्द्व यौन – शुचिता का मानदण्ड समाज ने जो स्थापित किया था वह अब बुरी तरह भंग हो चुका है। पैसे कमाने के चक्कर में औरतें जो पहले निरीह थी वे भी अब पुरानी रूढ़ियो के सामने सिर झुकाने को तैयार नहीं हैं। दलित स्त्रियां अपनी जाति के दस्तूरों के खिलाफ खड़ी हो रही हैं।

जितनी तेजी से दुनिया का शहरीकरण हो रहा है, इस समय दुनिया की जनसंख्या का 50 फीसदी लोग शहरों में रहते हैं। उतनी ही तेजी से गरीबी भी। आज गरीब लोग ज्यादा शहर में आ रहे हैं। रोजगार की तलाष में भूमिहीन और छोटे किसानों का शहरों की तरफ पलायन भी लगातार जारी है। इन शहरी गरीबों में अधिकतर अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, अन्य पिछड़ा वर्ग से हैं, और ये झुग्गियों में रहते हैं। शहरी विकास मंत्रालय की रिपोर्ट के अनुसार सन् 2010 तक झुग्गियों में रहने वालों की संख्या 9 करोड़ 30 लाख तक है और सन् 2017 तक 10 करोड़ पार कर जाएगी। देश के लगभग 16 फीसदी षहरी गरीब उत्तर प्रदेश में हैं। भूमंडलीकरण के चलते असंगठित मजदूरों की एक बड़ी तादाद शहरों में पहुंच चुकी है और कम मजदूरी में काम करने के लिए ये बाध्य हैं। सन् 1991 में सोवियत संघ क विघटन तथा नई उदार आर्थिक नीति ने भारतीय प्रर्वतन नरसिंह राव इसी समय प्रधानमंत्री हुए। फिर एक साल बाद बाबरी ढांचा ध्वंस हुआ। उसके बाद नई तरह के विज्ञापन बाजार में आने लगे। लखपती क्यों, करोड़पति बनिए। मेरा बच्चा सबसे महंगा कपड़ा क्यों न पहने, सैक्सी सौन्दर्य विज्ञापन शब्द बना। एक विज्ञापन में लड़की जिप खोलती है। द्वय अर्थ अश्लील दृश्यों की भरमार, बलात्कार के दृष्य, हिंसा के साथ लोक संस्कृति का पैसा बनाने के लिए हिंसक सेक्स दृश्यों में भरपूर उपयोग (आप 2005 में प्रकाशित कहानी टेलीविजन को देखें, लेखक : भीमसेन त्यागी)

बाजारवाद ने आज हमें पशु में बदल डाला है। हमारी संस्कृति को भी नष्ट करते जा रहा है। मनुष्य अपनी संस्कृति का निर्माण स्वयं करता है। पषुओं में नर–मादा होते हैं, पर भूमंडलीकरण ने हमें मनुष्य को भी नर और मादा में बांट दिया है। आज वर्तमान समय में असली कंडामेंटलिस्ट महाजनी सभ्यता पैसा कमाने की

मूल्याधंता है। बाजार जब हमारी संस्कृति, हमारे रहन–सहन के तरीके पर चोट करता है, तब हम पहले चौंकते हैं, प्रतिरोध भी करते हैं। लेकिन वह धीरे – धीरे हमें अपना अभ्यस्त कर लेता है। आज विज्ञापन पारिवारिक संबंधों को ध्यान में रखकर नहीं किये जाते हैं। क्या आप अपने बाल–बच्चों के साथ बैठकर टीवी देख सकते हैं ? पर धीरे–धीरे आपको आदत पड़ जाएगी। ये बाजारू अपसंस्कृति सिर्फ वर्तमान को ही नहीं इतिहास का भी कत्ल (बलात्कार) करती है।

प्रेमचंद ने साहित्य को राजनीति में आगे चलने वाला मशाल कहा था। इस समय ने राजनीतिक कहने को साहित्यकारों को कभी सम्मानित करते हों पर वे साहित्य के पाठक भी हैं – ऐसा नहीं लगता और बाजारवाद हमें नष्ट करता चला जा रहा है। हिन्दी की दशा पर फिराक की बात सही है–

''बहुत पहले से उन कदमों की आहट जान लेते हैं,
तुझे ऐ जिन्दगी हम दूर से पहचान लेते हैं।''

संदर्भ ग्रंथ

1. रमेश उपाध्याय – आगे की कहानी, 20 मई 2013
2. बीच सड़क पर, पेज –70
3. दुष्यंत का कहानी संग्रह
4. आप 2005 में प्रकाषित कहानी टेलीविजन को देखें, लेखक : भीमसेन त्यागी